

एक बेमिसाल जेल साहित्य मेरी टाइलर का जेलनामा

■ प्रकाश चंद्रायन

असंख्य मजदूर-किसान आज भी अनिश्चित काल के लिए जेलों में पड़े हुए हैं। यह उन सब लोगों का अपराध है जो भारत की उन असह्य स्थितियों को देखकर अविचलित और खामोश नहीं रह सकते। यह उन लोगों का अपराध है जो यह महसूस करते हैं कि इस व्यवस्था में आमूल परिवर्तन जरूरी है ताकि भारतीय जनता की कुशलता, रचनात्मकता, निपुणता और अध्यवसाय को पूरा विस्तार दिया जा सके ताकि वे एक नए ढंग के भारत का, सही अर्थों में आजाद और एक बेहतर भारत का निर्माण कर सकें

मेरी टाइलर, भारतीय जेलों में पांच साल, अनुवाद: आनंद स्वरूप वर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पहला संस्करण 1977, पेज 189, कीमत 300 रुपए.

मार्च 1977. जनादेश आपातकाल के विरुद्ध आया था. प्रसार माध्यमों और पुस्तक प्रकाशकों में आपातकाल की ज्यादातियों को छापने की होड़ थी. इसमें हकीकत थी तो सनसनी भी. मुनाफा था तो अभिव्यक्ति की मुक्ति का भाव भी. अनेक जेल डायरियां धड़ाधड़ बाजार में आ रहीं थीं. आज उनकी याद भी नहीं है. यह अध्ययन का विषय है कि उन डायरियों को जेल साहित्य का हिस्सा क्यों नहीं माना जाए और इसे एक स्वतंत्र विधा के तौर पर क्यों नहीं स्थापित किया जाए? खास कर इसलिए भी कि इनका सरोकार मानवाधिकार, सामाजिक अन्याय, राजनीतिक दमन और न्याय व्यवस्था के साथ ही साथ जेल व्यवस्था से भी है. यह नागरिक समाज के साथ ही अकादमिक जिम्मेदारी भी है. उच्चतम शोध संस्थानों और संसाधन संपन्न प्रकाशन केंद्रों को यह दायित्व लेना चाहिए कि जेल डायरियों, कैदियों की रचनाओं, साक्षात्कारों, रिपोर्टों, जांच समितियों और आयोगों की रिपोर्टों,

प्रकाश चंद्रायन स्वतंत्र पत्रकार हैं और पढ़ने लिखने में रुचि रखते हैं.
(prakashchandrai4021950@gmail.com)

जेल के इतिहासों आदि को इकट्ठा कर एक अद्यतन ज्ञानशाखा का सृजन करे ताकि एक अनदेखा पक्ष सामने आए. अमृतकाल में भी भारतीय जेलों में पांच लाख से ज्यादा लोग तिल-तिल कर मर रहे हैं. यह कैद आबादी एक छोटा देश ही है. सलाखों के भीतर इस अंधेरे राज्य की सांभ्यतिक शिनाख्त मानवीय मांग है.

छियालिस साल पहले

इसकी गहन और विस्तृत शिनाख्त का एक दुर्लभ उदाहरण बजरिए अनुवाद हिंदी में आया था. 1977 के मार्च में ही एक ऐसी जेल डायरी सामने आई जो लीक से अलग थी और आज छियालिस साल बाद भी वह नायाब है. इस पुस्तक की लेखिका न तो शौकिया और न ही पेशेवर लेखन से जुड़ी रहीं. लेकिन संयोगवश उन्होंने अन्यतम वृत्तांत लिखा. लेखिका हैं ब्रिटिश नागरिक मेरी टाइलर. उनकी यह किताब अंग्रेजी में *माय ईयर्स इन एन इंडियन प्रिजन* (प्रकाशक: विक्टर गोलांज लिमिटेड, लंदन) नाम से छपी. इसका हिंदी अनुवाद *भारतीय जेलों में पांच साल* नाम से तत्कालीन राधाकृष्ण प्रकाशन के ओमप्रकाश ने प्रकाशित किया और अनुवादक हैं *समकालीन तीसरी दुनिया* के संपादक और लेखक आनंद स्वरूप वर्मा. आनंद स्वरूप वर्मा का कहना है कि इस किताब का अनुवाद उनके जीवन का सबसे बड़ा पदक है. उनके मुताबिक 1977 में ही इसके तीन संस्करण हो गए थे और यह नेपाल के बौद्धिक क्षेत्र में भी बहुपठित

थी. अगला संस्करण 2012 में आया था.

मेरी-अमलेंदु

लेखकीय संदेश और भूमिका के अलावा चौदह अध्यायों में लिखित अपनी पुस्तक को मेरी टाइलर ने उन सहबंदियों को समर्पित किया है जो भारतीय जेलों में महान उद्देश्य के लिए बंद थे, खासकर उन बच्चों को जो उज्ज्वल भविष्य के आकांक्षी हैं. भारतीय जेलों में पांच साल की कथा जर्मनी से लौट रही मेरी की ट्रेन में भारतीय प्रशिक्षु इंजीनियर अमलेंदु सेन से भेंट और धीरे धीरे मैत्री में बदलने से शुरू होती है. दोनों का समान राजनीतिक-सामाजिक नजरिया रिश्ते को मजबूती देता है. 1967 की हलचलों से प्रभावित अमलेंदु देश के परिवर्तन में हाथ बंटाने भारत लौटता है और मेरी भी चंद माह बाद भारत को जानने-समझने और मित्र से मिलने भारत आती है. जब मेरी भारत पहुंचती है तो उसका सामना उद्वेलित बंगाल से होता है. नक्सलवादी में किसान विद्रोह की चिंगारी भड़क उठी थी. मेरी के शब्दों में, 'भारी संख्या में शिक्षित नौजवान गांव में चले गए ताकि वे कृषि क्रांति की राजनीति का प्रचार कर सकें और किसानों के संघर्ष में हिस्सा ले सकें. अमलेंदु के भाई के साथ मैं एक विश्वविद्यालय देखने गई. मुझे विश्वविद्यालय की दीवारों नारों से भरी दिखाई दी और विश्वविद्यालय एक भुतहे इमारत जैसा सुनसान खड़ा था. ...मैंने देखा कि लोगों के बीच नक्सलवादियों के प्रति बेहद हमदर्दी है और इस हमदर्दी का कारण उनके अंदर परिवर्तन की जबर्दस्त इच्छा का होना और मौजूदा सभी संसदीय पार्टियों के प्रति उनका मोहभंग होना है' (पेज 21).

विवाह और गिरफ्तारी

आगे दो महीने तक पर्यटक की दृष्टि से श्रीलंका-नेपाल सहित भारत के विभिन्न क्षेत्रों की जमीनी सचाई को स्तब्ध हो देखते हुए कई दिनों तक मेरी ऊहापोह में रहती हैं कि ब्रिटेन लौट जाएं, लेकिन अमलेंदु की परिवर्तनकामी दृढ़ता को महसूस करते हुए फिलहाल भारत में ही रुकने का फैसला करती हैं और 10 अप्रैल 1970 को दोनों विवाह कर लेते हैं. इसके बाद वह गांवों को देखने-जानने के लिए अमलेंदु के साथ

तत्कालीन बिहार के उद्योगिक नगर जमशेदपुर से थोड़ी दूर एक बदहाल गांव में जाती हैं। वहां वे गिरफ्तार कर ली जाती हैं। जादूगोड़ा थाने से उन्हें चाइबासा जेल लाया जाता है जहां अन्य कैदियों को अमानवीय यातनाएं दी जा रही थीं। वहां से हजारीबाग जेल में अलग अलग सेल में दोनों अलहदा बंद किए जाते हैं और एक-दूसरे से विदा लेते हैं।

मेरी को जानना किता में जगह मिलती है जहां कल्पना नामक सहबंदिनी भी है। कल्पना हर प्रसंग और घटना अंग्रेजी में मेरी को बताती है। मेरी तमाम अमानवीय स्थितियों का सामना कल्पना के सहयोग से ही करती हैं। मेरी की गिरफ्तारी सिंहभूम जिले में होती है और मुकदमा भी जमशेदपुर की अदालत में ही दर्ज है। इसलिए उसे अनेक बार जमशेदपुर जेल में लाया जाता है। उसकी जेलयात्रा हजारीबाग-जमशेदपुर के बीच चलती रहती है। इस तरह निर्दोष मेरी का एक भुक्तभोगी के बतौर यातनादायक जेल जीवन एक जिज्ञासु अध्येता के तौर पर भारतीय राजसत्ता और जनता के भीषण अंतर्विरोधों से सामना करते हुए शुरू होता है।

कैद-तनहाई

जून 1970 में हजारीबाग जेल में बंद किए जाने के कुछ देर बाद पूछताछ करते सादी वर्दीधारी अधिकारी मेरी पर आरोपों की बौछार करते हैं। मेरी इंकार करती हुई कहती है:

‘क्या मैं अपने पति से मिल सकती हूँ?’

‘तुम्हारा पति कौन है? तुम्हारी शादी नहीं हुई है। तुम सारे नक्सलवादियों की रखैल हो।’

‘और तुम निहायत धिनौने हो, जो ऐसा कह सकते हो।’

दूसरे दिन अखबारों में खबर छपी कि मैंने जेल में अपने फर्जी पति के साथ रहने की मांग की है। पांच साल बाद भारत से रवाना होने के समय तक मैंने फिर कभी अमलेंदु को नहीं देखा (पेज 17)।

हजारीबाग सेंट्रल जेल के महिला वार्ड में तमाम शासकीय खानापूरी और अखाद्य जलपान के बाद मेरी और कल्पना को कैद-तनहाई दिया गया जो पंद्रह वर्गफीट का एक बदबूदार कमरा था। वहां भी दोनों से पूछताछ का क्रम जारी रहा। ‘अखबारों में खबर छपी कि मैं छापामार लड़की हूँ और किसी यूरेनियम कारखाने को बारुद से उड़ाने की कोशिश में लगी थी, कि जंगल में पुलिस के साथ मुठभेड़ में लगी थी और एक पुलिस स्टेशन पर बमबारी

की थी’ (पेज 32)। बाहरी दुनिया से कटा जेल और जेल में भी कटी-कटी सीखचों में बंद कोठरी और तंग कोठरी में तन्हा मेरी को जेल जीवन का अभ्यस्त पात्र बनना था और वह बन रही थी। पल-पल पाबंदियां और न्यूनतम में भी न्यून ही विकल्प था। महिला वार्ड की मेटिन मैमून (कैदियों में से बनाई गई वार्डन) बंदिनियों के राशन से कुछ हिस्सा चुरा कर बेच लेती थी। खामोशी के सिवा कोई चारा नहीं था क्योंकि मेटिन चोप हैड वार्डर का मोहरा होती थी और यह पदानुक्रम ऊपर जेल सुपरिटेण्डेंट तक जाता था। कल्पना के साथ रहने की मांग पर जेल अधीक्षक का तर्क था कि ‘तुमलोग नक्सलवादी नेता हो। एक साथ रहना चाहती हो ताकि भाग निकलने की योजना बना सको और सरकार के खिलाफ षड्यंत्र कर सको’ (पेज 36)। फिर भी सन्नाटे के विरुद्ध जितनी कविताएं याद आतीं उसका पाठ करतीं, गाने गातीं और सीखचों से सटकर कल्पना से जोर जोर से बात करतीं और थककर शांत-निर्मल चांद को निहारतीं। ‘मैं इस बात के लिए कृतज्ञ थी कि जेल का जीवन मुझे प्रकृति से पूरी तरह अलग नहीं कर सका था’ (पेज 37)।

मेरी-कल्पना

सांस्थानिक यंत्रणा की निरंतरता में भी मेरी-कल्पना ने वार्ड की खुली जगह में फूल-तरकारी रोप कर हरियाली से मौन संवाद किया। लेकिन सुरक्षा-सतर्कता के नाम पर जेल प्रशासन ने सब उजाड़ कर मदांध ध्वंस से दोनों को चेतावनी दे दी कि कैदियों! सीखचों में रहो घुट-घुट मरो! पथरीला सेल गर्मी में तपता, आंधी में धूल से पटता, बारिश में बौछारें भीगाती, जाड़े में बर्फ की तरह ठंडाती यानी हर मौसम जिंदगी से लड़ने के लिए खड़ा हो जाता। अदालतों में तारीख-दर-तारीख पेशी होती। अभियोग बताए जाते। हर प्रकार के आरोप थोपे जाते। बताया जाता कि मुकदमे की सुनवाई शुरू होने वाली है। लेकिन वह दिन कभी नहीं आया। जेल में राजबंदी के साथ मानक व्यवहार की मांग पर ‘सुपरिटेण्डेंट ने साफ-साफ कह दिया कि हमलोग अपराधियों की श्रेणी में आते हैं और हमें जो दर्जा मिला है वह जारी रहेगा’ (पेज 41)। कभी-कभी कलकत्ता स्थित उप उच्चायुक्त कार्यालय से ब्रिटिश अधिकारी मिलने आते।

‘उसने बताया कि अंतर्वस्त्र के लिए राजधानी पटना से अनुमति लेनी होगी... मुझे हंसी आ

गई कि अपने कपड़े बदलने के लिए मुझे बिहार सरकार के मुख्य सचिव के नाम अर्जी लिखनी पड़ेगी’ (पेज 41)। अचानक सितंबर में मुआयना करते हुए सुपरिटेण्डेंट ने मेरी-कल्पना को दिन भर साथ रहने की छूट दे दी। ‘अगले दिन सबेरे हमारी कोठरियों के ताले खोल दिए गए और हमें दिन की रोशनी में और ‘आजादी’ के नए युग में विचरण की छूट दे दी गई’ (पेज 43)। उसी दिन धौंसबाज मैमून भी रिहा होकर जेल से चली गई और उसकी जगह नागो तैनात हो गई।

यह विडंबना ही है कि जिस निर्मम दंड संहिता, अपराध प्रक्रिया संहिता और जेल मैनुअल का सामना ब्रिटिश नागरिक मेरी टाइलर को करना पड़ रहा था, वह ब्रिटिश उपनिवेश की ही निर्मित है।

महिला वार्ड की नागरिकाएं

जेल का सामना मेरी जिस विलक्षण अंतर्दृष्टि और धैर्य से करती रहीं, वह उदाहरणीय है। महिला वार्ड में आने वाली बंदिनियों के वर्ग-वर्ण चरित्र से वह समझ लेतीं कि भारतीय समाज और सत्ता की बुनियाद सबलों के हितरक्षण में कार्यरत है। मेरी की आकलन क्षमता की परिपक्वता में जेलखाना ने समाजशास्त्र जैसी पीठिका बना दी थी। महिला किता में आने वाली आरोपियों का जैसा वर्णन विवरण मेरी ने अपनी पुस्तक में गहराई से दर्ज किया है, वह शोधकार्य से कमतर नहीं है। एक एक महिला आरोपियों का नाम सव्याख्या प्रस्तुत कर वह पाठकों को चकित कर देतीं हैं। उनकी नामावली लंबी है और वह स्त्री विमर्शकारों को सिखाती हैं कि भारतीय तलछट की इन नागरिकाओं को केंद्रित किए बिना कोई भी दावा अधूरा है। कल्पना, मैमून, नागो, सैबुनिसा, रोहिणी, सुकरी, लेउनी, बिशनी, बुलकानी, मोहिनी, पन्नो, बैगिया, बिल्किश, राजकुमारी, सोमरी, भक्तिन, बुधनी, बीना, हीरा, गुलाबी, दुलाली, कोरमी, बाल्को, गुरुवाड़ी, अलमोनी, बशीरन, सावित्री, शांति, राधामोनी, विरसी, मोती, सत्या और कुछ अनाम संधाल लड़कियों की जीवनकथाएं और घटनाएं जगजाहिर करतीं हैं कि भारत में न्यायपूर्ण मानवीय जीवन को असंभव बनाने का दुष्चक्र चल रहा है।

मेरी की सूक्ष्म दृष्टि एक ओर भारतमाता की सदावंचित बेटियों को देखती है तो दूसरी ओर विशेषाधिकारप्राप्त राजनेत्रियों को भी नहीं बख्शातीं। नवंबर की एक रात मेरी से

कोठरी खाली कराई गई और मय साजोसामान एक महिला 'राजनीतिक बंदी' ने प्रवेश किया। वह खनिक यूनियन की सेक्रेटरी थी और केदला खान मैनेजर की हत्या के मामले में गिरफ्तार हुई थी। वह दिन में कार्यालय में गप्पें मारती थी। महंगा खाना खाती थी। उसकी हर फरमाईश पूरी होती थी। कई महिला कैदियों को नौकर बना लिया था और उनसे वह मासिक स्राव के कपड़े धुलवाती थी।

तीन सप्ताह में ही उसे जमानत मिल गई और जेल में मिला भरपूर सामान लेकर विदा हो गई। बाद में वह विधायिका भी हो गई। हिंदी साहित्य समाज सहज अनुमान लगा सकते हैं कि यह महिला कौन रही होगी क्योंकि राजनीति के साथ वह साहित्य में भी दखल रखती थी और उनकी दो आत्मकथाएं खूब चर्चित हुईं। पता नहीं उन आत्मकथाओं में जेल प्रसंग को याद किया गया है या नहीं!

कुछ दिन बाद भाकपा की एक विधायिका भी सरकारी मेहमान होकर आई। वह अपने विधायक पति की हत्या के बाद सहानुभूति के कारण विधायिका बनी थी। लेकिन वह मार्क्स-लेनिन को नहीं जानती थी। वह रोजा-नमाज भी रखती थी। कहती थी कि वह विधानसभा की कार्यवाही नहीं समझती हैं। अंग्रेजी खाने और बुनाई में रूचि लेती थी। बिहार आंदोलन में शामिल एक प्रोफेसर, एक प्रधानाध्यापिका और एक पूर्व संसद सदस्या भी जेल में तशरीफ लाईं। सभी साधन संपन्न थीं और राजनीति में सत्ता संपन्न होना चाहती थीं। जेल प्रशासन इन्हें हर सुविधाएं तत्परता से मुहैया करता था। एक ओर जेल प्रशासन साधारण कैदियों की वैध सुविधाएं छीनता था तो दूसरी ओर प्रभावशाली कैदियों की जरूरत से ज्यादा खिदमत करता था। इस आपराधिक विभेद

को मेरी ने सविस्तार उजागर किया है।

पुरुष वार्ड के हालात

कैद तनहाई झेलते हुए भी मेरी पुरुष वार्डों में चल रही गतिविधियों को भांप लेती थी। सिर्फ इसलिए नहीं कि उसका पति अमलेंदु बंदी था बल्कि उच्च विचारों से लैस अन्य सहकैदियों का भी खयाल उसे हर क्षण रहता था। इसके साथ ही वर्णक्रम में सबसे नीचे धकेली गई जाति के प्रताड़ित कैदियों के प्रति भी वह गहरी सहानुभूति जताती थी। जादूगोड़ा थाने के उस अमानवीय दृश्य ने मेरी को हिला दिया, 'मैंने फर्श पर एक लड़के को बैठे देखा। हाथों में हथकड़ी और कमर में रस्सी बंधी थी। उसकी एक आंख सूजकर लाल हो रही थी। खून टपक कर गाल पर बह रहा था। वह केवल जांघिया पहने था और बुखार से कांप रहा था... दूसरे कमरे में अमलेंदु, उसका भाई और लगभग पंद्रह लोग एक-दूसरे से रस्सी से बंधे फर्श पर बैठे थे...सूजी आंखों वाला लड़का फिर बुखार से कांपने लगा। उसने अपने कपड़े मांगे पर अधिकारी तिरस्कारपूर्ण मुद्रा में हंसकर रह गया। मैंने उस लड़के के कंधे पर वह कपड़ा रख दिया जो सिपाही ने मुझे दिया था। उसे रायफल के कुंदे से काफी मारा गया था' (पेज 25)।

'हजारीबाग जेल में जब कैदियों को अलग अलग वार्ड में भेजा जाने लगा तो चलते समय मैंने फर्श पर झुके अमलेंदु के सर को सहला दिया और उसके भाई की ओर देख कर मुस्कुरा पड़ी' (पेज 27)। यहां भी पूछताछों का सिलसिला जारी रहा। पूछताछ अधिकारी ने बताया कि 'अमलेंदु मुझसे कहीं बुरी हालत में है।'

जेलों की पूरी व्यवस्था पुरुषसत्तात्मक थी डर, दमन और लूटपाट आधारित। जेल की नौकरी ने कर्मचारियों की क्रूर प्रवृत्ति को उभार दिया था। मुट्ठी भर वार्डर ऐसे मिले जो सहानुभूति रखते और हमें खबरें देते। नियमावली नाम की थी। 'मुझे बताया गया कि जेल मैनुअल की केवल एक प्रति है, उसे किसी को नहीं दिया जा सकता... कार्यालय में भी जेल मैनुअल नहीं देख सकती। अंततः जेलर ने साफ-साफ शब्दों में जवाब दिया कि जेल मैनुअल है ही नहीं (पेज 38)।'

'नकारात्मकता का माहौल था। सकारात्मकता और सुधार का दूर दूर तक पता नहीं। मुलाकाती में सिर्फ ब्रिटिश अधिकारी ही कभी-कभार मिलने आते थे। एक दिन अमलेंदु के माता-पिता मिलने आए। बिहार सरकार ने अनुमति दे दी थी। वे पांच सौ

मील की यात्रा कर आए थे। दस मिनट बातचीत की इजाजत थी। वे अमलेंदु और उसके भाई से मिल चुके थे। साथ मिलने की अनुमति नहीं थी। अमलेंदु को न देख पाने का मुझे दुख था' (पेज 58)।

योजनाबद्ध गोलीबारी

'अचानक एक रात दस बजे जेल सुपरिंटेंडेंट और जेलर तलाशी लेने आ गए। सेलों में हर सामान उल्टे-पल्टे गए। जमातलाशी ली गई। सुबह ताले नहीं खोले। अहाते में बागीचा खोद डाला। सख्ती बढ़ाई गई। हमें लगा कि बड़ी भूमिका तैयार की जा रही है। वार्ड की सुकरी हर पंद्रह दिन पर कैदी पति से मिलने कचहरी जाती थी। उसका पति नक्सलवादी सेल में जमादार था, लेकिन नक्सलवादियों का हमदर्द माने जाने वाले अन्य कैदियों की तरह उसे भी डंडा-बेड़ी दी गई थी। पति से प्राप्त सूचना के अनुसार सुकरी ने बताया कि अगली बार हर माह खतरे की घंटी के रिहर्सल के दौरान नक्सलवादियों पर व्यापक प्रहार की योजना बनी है। इसके बाद एक रविवार मूसलाधार बारिश के दौरान खतरे की घंटी और सीटियां बजीं। फिर गोलियां दगने की आवाज आई। गोलीकांड 25 जुलाई 1971 को हुआ था और अगस्त के उत्तरार्द्ध में *लंदन टाइम्स* में पढ़ा कि उस घटना में सोलह नक्सलवादी मारे गए थे। उप-उच्चायुक्त ने मुझे *लंदन टाइम्स* भेजना शुरू किया था, जिसे जेल अधिकारियों ने सेंसर करने की जरूरत नहीं समझी थी। *टाइम्स आफ इंडिया* के अनुसार बारह नक्सलवादी मारे गए थे। जांचकर्ता अवकाशप्राप्त जज ने गोलीकांड को उचित ठहराया था' (पेज 64-65)। 'जेल में ही बनी अस्थाई अदालत में मैंने तीन साल में पहली बार 30 जून 1973 को पैंतीस सह-अभियुक्तों को देखा था' (पेज 122)।

'जमशेदपुर में पेशी के बाद हजारीबाग जेल लौटने के लिए बस में बैठने के दौरान लेखिका मेरी ने एक दृश्य देखा कि कलकत्ता से आई एक बूढ़ी मां अपने बेटे से मिलना चाहती थी। जब उसका बेटा भी बस में बैठने लगा तो दो-चार शब्द कहने की इजाजत मिली। मां बेटे के पैरों में बेड़ियां देख रोने लगी तो बेटे ने पास बुला कर कहा, मां, तुम्हारे हाथ में भी तो चूड़ियां हैं, फिर मेरे पैरों में बेड़ी है तो तुम क्यों दुखी हो रही हो' (पेज 176)।

पाठकों से निवेदन

कई पुराने पाठकों ने अपनी सदस्यता का नवीकरण लंबे समय से नहीं करवाया है। फिर भी पत्रिका उनको भेजी जाती रही है। उनसे अनुरोध है कि कृपया सदस्यता का नवीकरण करवा कर पत्रिका के मददगार बनें। पता बदलने की सूचना हमें पत्रिका पर छपे फोन नंबर या ईमेल से दें।

मेरी ने अपनी पुस्तक में लेखिका के दो शब्द में लिखा है, 'भारत में, लोगों का ऐसा कोई भी गुट नहीं है जो अपने आपको नक्सलवादी कहता हो। इस शब्द का इस्तेमाल आंदोलन के समर्थकों को अपमानजनक ढंग से चित्रित करने के लिए विरोधियों द्वारा किया जाता था... मैं इस बात पर फिर जोर देना चाहूंगी कि इस पुस्तक में प्रयुक्त नक्सलवादी शब्द को किसी भी रूप में अपमानजनक अर्थ से न जोड़ा जाए' (पेज 176)।

आंदोलनों के कैदी

सिर्फ नक्सलवादियों को ही नहीं, बल्कि जेल में आने वाले अन्य आंदोलनकारियों से मेरी आंदोलनों का चरित्र समझ लेती थी। 'शिक्षा के सरकारीकरण की मांग करते हड़ताली अध्यापकों का एक जत्था जेल में आया था। उन्हें उच्च श्रेणी मिली थी। अच्छा खाना और काफी कपड़े दिए गए थे। जाते हुए वे कपड़े ले गए थे, जबकि कुछ कैदियों के पास ब्लाउज तक नहीं थे। सहायक जेलर की दलील थी कि वे गरीब हैं और जेल के बाहर चिथड़े ही लपेटती हैं। उन्हें आशा नहीं करनी चाहिए कि समृद्ध होने के लिए जेल में रखा गया है। लेकिन कांग्रेस सरकार ने चुनाव जीत लिया था और इसके लिए जिस नारे का इस्तेमाल किया गया था, वह था गरीबी हटाओ' (पेज 93)। उत्तरप्रदेश में पीएसी विद्रोह, असम में भाषा आंदोलन, पंजाब के छात्र आंदोलन, डाककर्मियों की हड़ताल, कांग्रेस के संकट और आंध्रप्रदेश के दंगों की भी चर्चा इस पुस्तक में है।

1972 के क्रिसमस से थोड़ा पहले आंदोलनकारी अराजपत्रित कर्मचारियों से जेल भर गया। वे वेतन वृद्धि, चिकित्सा और आवास सुविधा की मांग कर रहे थे और जेल में भी बेहतर सुविधा का हक छोड़ते नहीं थे। आखिरकार हड़ताल वापस ली गई और उन्हें भौतिक उपलब्धि नहीं हुई। बहुतों को नौकरी से निकाल दिया गया था और कुछ के वेतन काटे गए थे। मई 1974 में रेलकर्मियों की देशव्यापी हड़ताल हुई। बीस दिनों की हड़ताल में पचास हजार रेलकर्मियों गिरफ्तार किए गए। ये सभी आंदोलन विभागीय और सिर्फ अर्थवादी थे। इसलिए अल्पकालिक शक्ति दिखा कर निरस्त हो गए या सरकार ने सेना की मदद से सख्ती से कुचल दिए।

जेपी आंदोलन और आपातकाल

इस किताब में दो ऐसे आंदोलनों का जिक्र है

जिसे छात्रों ने शुरू किया था और उनका दूरगाम सियासी असर पड़ा। जनवरी 1974 में गुजरात में विरोध प्रदर्शनों का सिलसिला शुरू हुआ। सेना तैनात की गई। 73 नगरों में कर्फ्यू लगे। 40 लोग मारे गए। बिहार में भी 21 जनवरी को आम हड़ताल हुई और मार्च में ही छात्र आंदोलन शुरू हो गया था। मीसा और डीआईआर में गिरफ्तारियों के कारण जेल भर गए थे। गोलीबारी, आगजनी, निषेधाज्ञा, कर्फ्यू, फौजी परेड के बावजूद आंदोलन रुक नहीं रहा था। तीन सप्ताह बाद आंदोलन का नेतृत्व जयप्रकाश नारायण के हाथ में आ गया था। वे पुराने गांधीवादी और कम्युनिस्ट विरोधी थे, हालांकि किसी जमाने में सोशलिस्ट पार्टी में रह चुके थे। जैसे जैसे आंदोलन तेज होता गया, नेतृत्व अधिकाधिक दक्षिणपंथी दलों के हाथ में जाने लगा। इन दलों का सारा ध्यान विधानसभा भंग कराने और संसद के नए चुनाव कराने की मांग पर टिका था जिसके बारे में मुझे पक्का यकीन था कि इससे दूसरी भ्रष्ट सरकार के सत्तारूढ़ होने के सिवा कोई नतीजा नहीं निकलेगा... संपूर्ण क्रांति और वर्गविहीन जनतंत्र की जो धारणा जयप्रकाश नारायण ने पेश की थी, वह खुद उन्हें भी अव्यवहारिक लग रही थी... मैंने साफ शब्दों में कह दिया कि स्पष्ट राजनीतिक विचारधारा के बिना स्वतःस्फूर्त ढंग से चलने वाला आंदोलन भारत की समस्याओं का अंतिम तौर पर समाधान ढूंढ सकता है, इसमें संदेह है (पेज 171-174)।

महिला वार्ड जेपी आंदोलन की महिला समर्थकों से भर गया था। दिन के तीसरे पहर वे अमशीनीकृत ग्रामीण जीवन की प्रशंसा में गीत गातीं-नाचतीं और समझतीं कि अमशीनीकरण से ही भारत की समस्याओं का हल निकलेगा (पेज 171)। असंतोष और संकट गहराता जा रहा था। 3 जनवरी 1975 को समस्तीपुर स्टेशन पर सात सौ पुलिसकर्मियों की तैनाती के बावजूद रेलमंत्री ललित नारायण मिश्र की हत्या हो गई थी। जयप्रकाश आंदोलन भी शांत हो गया था।

'हमारा मुकदमा शुरू होने के कुछ ही दिन पहले इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी को चुनाव में भ्रष्ट तरीके अपनाने के लिए दोषी ठहराया था। सरकार के लिए यह जबर्दस्त आघात था। विपक्ष ने इंदिरा गांधी से इस्तीफे की मांग की। जवाबी कार्रवाई में प्रधानमंत्री ने आपातकाल की घोषणा की। नागरिक अधिकार स्थगित किए गए। सेंसरशिप लागू

हुई। विरोधियों की गिरफ्तारियां हुईं। 26 जून की रात ट्रकों में लादकर सरकार के नए विरोधियों को लाया गया। आपातकाल की घोषणा से स्पष्ट था कि सरकार कितनी कमजोर हो गई थी। सबसे ज्यादा हैरानी मुझे तब हुई जब सोवियत संघ ने भी पहले के अनेक अवसरों की तरह इस बार भी भारत सरकार की कार्रवाई को पूरा-पूरा समर्थन दिया, जिससे दुनिया की पीड़ित जनता की खुशहाली के लिए काम करने की अपेक्षा की जाती है' (पेज 196)। वही हुआ, जैसा मेरी ने आकलन किया था। गुजरात और बिहार का छात्र आंदोलन सत्ता के शतरंज का मोहरा बनकर इस्तेमाल हो गया। कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं ला सका।

जेल में जाति

उत्तरी लंदन के बिल्सडेन नामक उपनगर में स्कूल में अनेक देशों के बच्चों को पढ़ाते हुए मेरी की जातिगत संबंधों के बारे में रुचि हुई और 'कम्मेन अगेस्ट रेशियल डिस्क्रिमिनेशन' से जुड़ गई। लेकिन भारत में गिरफ्तारी के बाद कदम-कदम पर जातिगत उत्पीड़न का भीषण साक्षात्कार हुआ। जेल के महिला वार्ड में जब भी कोई नई कैदी आती तो उसके चारों तरफ उत्सुकता भरी भीड़ का पहला सवाल होता: क्या जात है? इस महत्वपूर्ण जानकारी के आधार पर ही उसके समूचे व्यवहार का मूल्यांकन किया जाता। अलग अलग जातियों के लोगों की अलग अलग विशेषताओं और खूबियों के बारे में पहले से तय गई धारणाएं भी उसी हद तक सच थीं जिस हद तक अंग्रेजों की यह धारणा कि सभी स्कॉटलैंडवासी नीच होते हैं या सभी आयरिश काहिल होते हैं... जाति प्रथा किस तरह समाज के उन तत्वों का मकसद पूरा करती है, जो किसी न किसी कारण प्रगति को रोकना चाहती है, इसका उदाहरण मुझे एक बार एक महिला वार्डर द्वारा बताई गई एक घटना से पता चला। उसने बताया कि उसके गांव में हिंदुओं में 'सर्वोच्च' माने जाने वाली जाति के लोग यानी ब्राह्मणों ने लोगों को आगाह किया कि वे स्थानीय स्कूल में अपने बच्चों को पढ़ने न भेजें क्योंकि वहां कुछ इसाई और हरिजन अध्यापक हैं। इसके संपर्क से लोगों की जाति नष्ट हो जाएगी' (पेज 104)। 'एक दिन हमें थोड़ा दही दिया गया... मैं किसी काम में लगी थी। मैंने दुलाली से कहा कि वह अपना हिस्सा लेने के साथ मेरा हिस्सा भी लेती आए, जब वह दही लेने गई और मेरे हिस्से की मांग की तो वार्डर ने झिड़क दिया: तुम क्या

समझती हो कि टाइलर किसी मेहतारानी के हाथ का छुआ दही खाएगी... जेल के अन्य कर्मचारियों की तरह हरिजनों के खाने को वह भले ही गंदा समझता हो, लेकिन उनके द्वारा दी गई घूस को लेने में उसे हमेशा खुशी ही होती है' (पेज 161).

ऐसे अनेक नकारात्मक उदाहरणों को मेरी ने अपनी पुस्तक में दर्ज किया है कि कैदी जीवन में, जहां सांस-सांस पर दमन का पहरा होता है, वहां भी जाति के कांटे बिछे रहते हैं.

चुंबकीय नेत्र और फैला क्षितिज

इस दस्तावेजी पुस्तक में इतने महत्वपूर्ण प्रसंग हैं कि किसे लें और किसे न लें कि दुविधा बनी रहती है. हर प्रसंग ध्यानाकर्षण करता मिलता है. स्थूल हो या सूक्ष्म, मेरी की आंखें सब सहेज लेती हैं. जमशेदपुर से हजारीबाग लौटते हुए उसकी सचेतनता स्वाधीन हो जाती है: 'मैं गाड़ी की अगली सीट पर बैठी थी और छोटानागपुर के गांवों की बड़ी साफ झलक दिखाई पड़ रही थी. पहाड़ियों और दूर तक फैले क्षितिज के बीच दूर जाती सड़क देखकर अचानक अतीत के आजाद जीवन की यादें ताजा हो जातीं. लेकिन जल्दी ही मैं बाहर की तमाम चीजों को उस सीमित समय में अपनी चेतना में स्थापित करने में लग जाती. हम धूप और आकाश के बीच उन खेतों से गुजर रहे थे जिनकी फसलें काटी जा चुकी थीं और अगली बुआई के लिए वसंत का इंतजार कर रहे थे. आकाश रंगहीन हो रहा था और सूरज किसी चुंबकीय नेत्र की तरह लग रहा था' (पेज 176).

'जमशेदपुर के आसमान पर छाया उद्योगिक धुंध के विपरीत यहां का आसमान बहुत साफ था. हजारीबाग चमक रहा था. कभी कभी विस्तृत लाल धरती डूबते हुए सूरज की रोशनी में नीली फिर लोहे के रंग के रंग की और कुछ देर बाद सुनहरी हो जाती थीं. इन कभी न आने वाले थोड़े से क्षणों को मैं अपनी स्मृतियों में समेट लेने के लिए तड़प उठती थी. फिर भी मैं कभी इनको कागजों पर नहीं उतार सकी. जेल जीवन के दौरान मुझे सौंदर्य की अधिक से अधिक जरूरत महसूस होने लगी... कभी कभी दिन के तीसरे पहर मेरे बगल के वार्ड में कोई कैदी अपनी बांसुरी पर बहुत मधुर और कोमल स्वर निकालता और मैं सुनती रहती. उसे कभी पता नहीं चला कि दीवार की दूसरी तरफ उसकी कोई प्रशंसिका बैठी सुन रही है' (पेज 137). मेरी के मन और मस्तिष्क की

ऐसी जुगलबंदी इस स्मृतिकथा में यहां वहां सुनाई पड़ती रहती है. जिस चुंबकीय नेत्र और क्षितिज विस्तार का उल्लेख मेरी ने किया है, वह उसके व्यक्तित्व में ही था.

आंसू और निर्वासन

ऐसे ही कठोर-कोमल अहसासात से गुजरती मेरी सोचती रही कि उसका मुकदमा शुरू होगा कि नहीं. इसी के बीच अचानक एक संदेश आया: 'मेरी टाइलर को जमशेदपुर जाना है.' उसे फौरन तैयार होने का कहा गया.

जमशेदपुर में जज ने आदेश दिया कि अब यहीं रहना पड़ेगा क्योंकि मुकदमा शुरू होने में अब देर नहीं है. 'मैं खुश हो गई कि स्थायी आदेश मिला. एक दोपहर आफिस से बुलावा आया. सुपरिंटेंडेंट ने बताया कि अभी-अभी उप-उच्चायोग से फोन आया कि 15 मई को मेरी मां की मृत्यु हो गई. मैं नहीं चाहती थी कि जेल अधिकारियों के सामने आंसू निकलें. अब मैं सीधे अपनी कोठरी में गई. मुझसे आंसू रोके नहीं गए' (पेज 193). 4 जुलाई 1975 को अदालत में प्रवेश करते ही मेरे वकील ने इशारे से मुझे बुलाया और फुसफुसा कर कहा कि मेरे विरुद्ध मुकदमा वापस लिया जाएगा. दूसरे दिन उक्त याचिका बाकायदा पेश की गई. मुझे औचित्य के आधार पर छोड़ा जा रहा था क्योंकि मुझे अधिक दिनों तक जेल में रखना राष्ट्रमंडल के दो सदस्य देशों भारत और ब्रिटेन के अच्छे संबंधों के लिए हानिकारक था. जज ने मुझे कटघरे में बुलाया और कहा: 'तुम्हें सारे आरोपों से बरी किया जाता है. जाओ और खुश रहो.'

मैंने कहा: 'जब तक इतने सारे लोग बिना मुकदमा चलाए जेल में पड़े रहेंगे, तब तक यह कैसे संभव होगा कि कोई खुश रहे. मेरी तरफ देख कर जज महोदय मुस्कुरा पड़े. शायद उन्होंने मेरी बात समझ ली थी.' जेल के अंदर एक पुलिस अफसर सामने आया और उसने मुझे देश से निर्वासित करने का सरकारी आदेश दिया कि मैं सात दिनों के भीतर भारत से चली जाऊं. सिद्धांत रूप से मैं स्वतंत्र थी. लेकिन मेरी गिरफ्तारी के लिए दूसरा वारंट जारी था कि मैं वैध दस्तावेजों के बिना सफर कर रही थी. मेरा पासपोर्ट पहले ही जब्त था और वह पुलिस के अधिकार में था. पुलिस सुपरिंटेंडेंट से मिलने के बाद वाणिज्य दूत मेरे पास आया. दूसरे दिन सवेरे मुझे वाणिज्य दूत के साथ कलकत्ता रवाना हो जाना था. सवेरे चार बजे महिला वार्डर ने मुझे बुलाया कि कोई मुझसे मिलना चाहता है. उस व्यक्ति से जब मैंने बताया कि मुझे निर्वासित किया जा रहा

है तो वह मुस्कुरा पड़ा और मुट्ठी उठा कर अभिवादन किया और कहा, हम लोगों को मत भूलना. हम फिर मिलेंगे (पेज 199). अभी पौ फटने वाली थी.

आधी रात उड़ान

सवेरे जेल सुपरिंटेंडेंट और वाणिज्य दूत मौजूद थे. न पूछताछ न तलाशी. पुलिस दस्ते के साथ हम स्टेशन पहुंचे. बिहार के गृह संयुक्त सचिव और पुलिस सुपरिंटेंडेंट ने एयर कंडीशंड डिब्बे में बैठाया. महिला पुलिस मेरे साथ तैनात थी. हावड़ा स्टेशन पर मुझे कलकत्ता पुलिस के सुपुर्द किया गया. अमलेंदु और उसके भाई से मिलने की कोई गुंजाईश नहीं थी. उन्होंने मेरा पासपोर्ट लौटाया, लेकिन जब्त घड़ी और पैसे नहीं. हवाई अड्डे पर मुझे वीआईपी कक्ष में रखा गया. पुलिस अधिकारी यह कहते हुए चला गया कि मैं अब कैदी नहीं, बल्कि सरकार की अतिथि हूं. एक ऐसी अतिथि जिसे घेरकर रखा गया हो. एक महिला पुलिस वहां बैठी रही. मेरा विमान आधी रात को रवाना होने वाला था. सादी वर्दी में एक व्यक्ति आता रहा. आखिरकार रात के पौने बारह बजे बिहार के संयुक्त गृह सचिव मुझसे मिलने आए. सादी वर्दी में दो लोग मेरे साथ विमान तक पहुंचे और तब तक खड़े रहे जब तक मैं पासपोर्ट और टिकट लिए विमान के अंदर नहीं पहुंच गई (पेज 202).

अंतिम आकलन

निर्वासन के आठ माह बाद लिखित इस किताब में मेरी ने अंत में दर्ज किया, 'जेल में जिन गरीब किसानों और मजदूरों के साथ मैंने अपना समय बिताया, उस तरह के असंख्य मजदूर-किसान आज भी अनिश्चित काल के लिए जेलों में पड़े हुए हैं और इस इंतजार में हैं कि उनका मामला हल हो. बच्चे जेलों में बड़े हो रहे हैं. अमलेंदु का अपराध, कल्पना का अपराध, उन सब लोगों का अपराध है जो भारत की उन असह्य स्थितियों को देखकर अविचलित और खामोश नहीं रह सकते. यह उन लोगों का अपराध है जो यह महसूस करते हैं कि इस व्यवस्था में आमूल परिवर्तन जरूरी है ताकि भारतीय जनता की कुशलता, रचनात्मकता, निपुणता और अध्यवसाय को पूरा विस्तार दिया जा सके ताकि वे एक नए ढंग के भारत का, सही अर्थों में आजाद और एक बेहतर भारत का निर्माण कर सकें (पेज 204). ■